Educational Administration: Theory and Practice
2021, 27(4), 1439 -1441
ISSN: 2148-2403
https://kuey.net/

Research Article

Feminist Discourse and the Contemporary Relevance of Dayanand

Dr Meena Sharma[1*]

Citation: Dr Meena Sharma, (2021). Feminist Discourse and the Contemporary Relevance of Dayanand, *Educational Administration: Theory and Practice*, 27(4) 1439 -1441
Doi: 10.53555/kuey.v27i4.11590

ARTICLE INFO

ABSTRACT

Feminist discourse in modern India has often been framed through Western paradigms of gender equality and social justice. Yet, nineteenth-century reformers such as Swami Dayanand Saraswati (1824–1883) articulated a vision of women's emancipation deeply rooted in Indian philosophical and cultural traditions. This paper examines Dayanand's reinterpretation of the Vedas and his advocacy for women's education, freedom of choice in marriage, and moral and intellectual equality. By situating his ideas within the broader context of socio-religious reform movements and early feminist thought, the study highlights how Dayanand anticipated core feminist concerns related to agency, autonomy, and equality long before their formal articulation in modern feminist theory. The paper also explores the contemporary relevance of his ideas in confronting gender-based inequalities in twenty-first-century India, suggesting that his call for a return to Vedic dharma can be reimagined as an appeal for gender justice grounded in spiritual and ethical rationality. In this light, Dayanand's feminist insight emerges as both historically significant and enduringly relevant for rethinking feminist ethics in contemporary Indian society.

समस्या है तो समाधान भी है –

किसी भी व्यक्ति अथवा विचार की प्रासंगिकता की कसौटी वर्तमान युग की चुनौतियाँ और समस्याएँ होती हैं। अर्थात् आज की चुनौतियों और समस्याओं से जूझने में कोई व्यक्ति अथवा विचार कितना कारगर है, कितना पथप्रदर्शक है कितना सहायक है, कितना समयानुरूप है और कितना मानवीय है, उस कसौटी पर कसकर ही किसी व्यक्ति या विचारधारा को प्रासंगिक कहेंगे। अभी 30 जनवरी 2010 को ही हरियाणा के रोहतक जिले के खेड़ामहम पंचायत में बिलकुल तालिबानी अंदाज में फैसला सुनाते हुए एक युवा दंपती को शादी के तीन साल बाद और जिसकी गोद में दस महीने की बच्ची भी है, आपस में भाई–बहन घोषित कर दिया। इंसानियत को शर्मसार कर देने वाली इससे बड़ी क्रूरता और त्रासदी क्या होगी? उस मासूम के बारे में भी नहीं सोचा गया कि उसका भविष्य क्या होगा! देश के अंदर कानून होने और गणतंत्र के 75 साल होने के बाद भी इस तरह की घटना से कई तरह के सवाल खड़े होते हैं। क्या फैसले से पूर्व पति और पत्नी का संबंध अनैतिक है? फैसले के बाद भाई और बहन का संबंध अनैतिक है? फिर बच्चे का पिता कौन है? उसका पूर्व पिता? या वर्तमान मामा (फैसलानुसार)। लेकिन भाई और बहन के बीच पवित्रता का रिश्ता होता है, किसी कलंकित संबंध के दाग का नहीं। भाई और बहन के आपसी बच्चे नहीं होते। क्या सही है! क्या गलत है!

यह सुनकर मन सहज मानने को तैयार नहीं होता है कि यह तालिबान की घटना न होकर हिंदुस्तान की घटना है। 30 जनवरी, 2010 से ठीक चार दिन पूर्व गणतंत्र के 60 वर्ष पूरे होने के बाद की घटना है, चंद्रयान के युग की घटना है! घटना है, किस्सा नहीं। जाति और गोत्र को लेकर हिंदुस्तान की पहली और आखिरी घटना भी नहीं है। तालिबानी फैसले व्यक्तिवादी, जातिवादी पंचायत इस तरह के मामलों में जो औरत और बच्चे को अकसर मौत के घाट उतार देती हैं। इस पर दयानंद सरस्वती मुस्कराए। जैसे हर परमाणु परीक्षण के बाद बुद्ध फिर से मुस्कराते हैं। जातिवादी समाज–व्यवस्था की यह चरम परिणति है। जिसे जन्म जातिवादी विहीन व्यवस्था के स्थान पर गुण–कर्म आधारित मानवीय व्यवस्था के महर्षि दयानंद स्वप्न द्रष्टा थे। उसकी इस क्रूरता अभिव्यक्ति पर महर्षि और क्या करेंगे? अंतर्जातीय विवाह का प्रोत्साहन देकर एवं शिक्षा के माध्यम से जात–पाँत की दीवारों को उनके अनगिनत अभिशापों के साथ छिन्न–भिन्न कर एक नए मानवीय समाज के निर्माण के लिए लोगों की सोच एवं मानसिकता को बदलने का जो स्वप्न महर्षि दयानंद एवं आर्यसमाज ने देखा था, ताकि जिसे साकार कर सामाजिक परिवर्तन एवं एक नए भारत का निर्माण हो सके। वह स्वप्न अधूरा रह गया। ऐसा लगता है कि उस स्वप्न की मंजिल अभी भी दूर है। देश में न तो संविधान की कमी है और न ही कानून की कमी है, कमी है तो सिर्फ मानसिकता की। मानसिंक संरचना बदले बिना सामाजिक संरचना नहीं बदली जा सकती। आर्यसमाज का समग्र सामाजिक आंदोलन पुरानी सामंती मानसिक संरचना को तोड़कर नवीन सामाजिक संरचना का निर्माण हेतु प्रतिबद्ध था। आर्यसमाज का जन्म स्त्री और पुरुष दोनों की सामाजिक आजादी के लिए मानवीय वातावरण एवं समान अवसर प्रदान करना था। आर्यसमाज के अतिरिक्त आज भी शायद ही कोई सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक संगठन ऐसा हो, जिसका जन्म और जिसकी बुनियाद जातिवादी व्यवस्था को तोड़ना रहा हो।

जाति आधारित राजनीति ठीक नहीं –

इसके विपरीत राजनीतिक संगठन तो जातिवाद को वोट बैंक की राजनीति के तहत इस्तेमाल करते हैं, कभी गुमराह कर उसे उत्तेजित करते हैं, गोलबंद करते हैं। यही नहीं बल्कि आरक्षण एवं सामाजिक न्याय के नाम पर जाति आधारित राजनीतिक पार्टियों का गठन होता है, उनके जाति के नेता बनते हैं, जाति के नाम पर टिकट बँटते हैं, जाति के नाम पर वोट डाले जाते हैं। 1975 में जे.पी. आंदोलन एवं आपातकाल के दौरान गोलबंद सभी नेता आज आपको सामाजिक न्याय (समाजवाद) के नाम पर राजनीति की दुकान चलाते हुए जातीय राजनीति करते मिल जाएँगे। 1947 की आजादी के बाद विभिन्न राजनीतिक पार्टियों ने सामाजिक आजादी के प्रश्न को नेपथ्य में छोड़ दिया। अस्पृश्यता–निवारण जाति–तोड़ो आंदोलन को लेकर चलने वाला संगठन अगर कोई था तो

Copyright © 2021 by Author/s and Licensed by Kuey. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.

वह था महर्षि दयानंद प्रणीत आर्यसमाज। किंतु राजनीतिक पार्टियाँ नहीं चाहतीं कि वह जातिवादी संरचना बदले, समाज समरस हो। बल्कि समाज में "मिले सुर मेरा तुम्हारा" के स्थान पर 'अपनी–अपनी डफली अपना–अपना राग' चले। परिणाम आर्यसमाज जैसे संगठनों को जात–पाँत तोड़ने का रचनात्मक प्रमाण आशानुकूल परिणाम नहीं मिल पा रहा है।

ऐसा नहीं है कि जाति के प्रति दृष्टिकोण न बदले और स्त्री के प्रति बदल जाए, क्योंकि दोनों दृष्टिकोणों का जन्म सामंतवाद की कोख से हुआ है। महर्षि दयानंद की वैचारिक सैद्धांतिकी जाति और स्त्री की संरचना परिवेश, स्थिति से टकराकर निर्मित होती है। वे जन्म–जाति के स्थान पर गुण–कर्मवादी व्यवस्था/परिवेश का नया ढाँचा तैयार करते हैं। स्त्री के समग्र विकास के लिए पुरुष के समान स्त्री के लिए समान परिवेश, समान अधिकार, समान कर्तव्य, समान भूमिका, समान नियम आदि निर्धारित करते हैं। पतिव्रता स्त्री के साथ–साथ पत्नीव्रता पुरुष, स्त्री के लिए स्वयंवर (चयन की स्वतंत्रता), पुरुष के साथ–साथ स्त्री के लिए भी विवाह–विच्छेद, आचरण की शुद्धता स्त्री के साथ–साथ पुरुष के लिए भी ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक है। महर्षि दयानंद प्रथम सामाजिक चिंतक हैं जिन्होंने ऐसा कोई नियम स्त्री के लिए नहीं बनाया जो पुरुषों पर लागू न हो सके। वे पृथक्–पृथक् या दोहरे मापदंडों के स्थान पर समान मानदंड एवं समान अधिकार की घोषणा करते हैं। शिक्षा जन्मसिद्ध अधिकार है। स्त्री–शिक्षा अनिवार्य बनाकर उसके उल्लंघन पर अभिभावक/राज्य को यथायोग्य दंड का प्रावधान करने वाले महर्षि दयानंद क्रांतिकारी सामाजिक चिंतक एवं कर्मयोगी थे। आज स्त्रियों की स्थिति एवं भूमिका बदली है, उसका मार्ग दयानंद ने ही प्रशस्त किया था। स्त्री–शिक्षा के लिए आर्यसमाज ने आंदोलन खड़ा कर दिया था। लाखों, करोड़ों स्त्रियों का जीवन स्कूल आंदोलन के माध्यम से बदला गया। साथ ही उसे देख अन्य स्त्रियों को भी राह मिती। शिक्षा स्त्री–मुक्ति का प्रथम द्वार है, इस चिंतन के साथ ही शिक्षा का द्वार प्रत्येक स्त्री के लिए खोला गया, क्योंकि बिना शिक्षा के व्यक्तित्व की सार्थकता एवं परिपूर्णता संभव नहीं । शिक्षा स्त्री–सशक्तीकरण की कुंजी है। शिक्षा स्त्री जीवन की पूँजी है। 98 प्रतिशत पूँजी पर तो पहले से ही पुरुषों ने कब्जा कर रखा है और संपत्ति के अधिकार के लिए स्त्री लड़ सकती है। स्त्री इसी पूँजी के माध्यम से उस 98 प्रतिशत पूँजी पर चोट कर सकती है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संपति में स्त्री को अधिकार देकर उन्हें और मजबूत बना दिया है।

महर्षि दयानंद की शिक्षा की इस परिधि में समाज की सभी स्त्रियाँ थीं। शिक्षा के अधिकार के प्रयोग का अवसर यदि उन्हें मिलता तो स्त्री–समाज का हर तबका विकसित होता। व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र–सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, औद्योगिक, प्रशासनिक, व्यावसायिक आदि में उनकी सक्रिय भागीदारी होती, सिर्फ सांकेतिक प्रतिनिधित्व न होता। विकास की मुख्यधारा के केंद्र में होतीं। आम औरत के हालात बदलते, उनकी तस्वीर एवं तकदीर दोनों बदलती, किंतु ऐसा हो न सका। स्त्रियों का सांकेतिक रूप से सत्ता–संस्थानों में प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व होने से व्यवस्था नहीं बदलती है। राष्ट्राध्यक्ष, मुख्यमंत्री, राज्यपाल, सुप्रीम कोर्ट/हाईकोर्ट की न्यायाधीश, अधिकारी आदि पदों पर उँगलियों पर गिनी हुई इक्की–दुक्की स्त्रियों के अपनी विशिष्ट स्थिति, संयोग और सौभाग्य के कारण आने से आम औरत के लिए व्यवस्था नहीं बदल जाती।

महिला आरक्षण विधेयक का भविष्य भी अधर में लटका हुआ है। उस पर हो रही राजनीति और आरोप के पीछे का यह आधार कि इसका लाभ क्रीमी लेयर/सवर्ण जाति/ऊँचे वर्ग की महिलाओं को होगा, इसका अवसर ही नहीं मिलता। यदि महर्षि दयानंद के आदर्श पर चलकर स्त्रियों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाकर एवं राज्यों का मौलिक कर्तव्य बनाकर उसका लाभ स्त्री–समाज के सभी हिस्सों को दिया जाता। सभी स्त्रियों (दलित, आदिवासी, पिछड़ा वर्ग, शहरी–ग्रामीण, अमीर–गरीब आदि) का सम्यक् विकास होता। व्यवस्था के सभी क्षेत्रों में सक्रिय भागीदारी से व्यवस्था बदलती। महिलाओं में इतना गहरा स्थिति–भेद न होता। तब महिलाओं को इस आरक्षण की बैसाखी की आवश्यकता ही नहीं होती। उनकी सहज एवं सघन उपस्थिति राजनीति सहित तमाम क्षेत्रों में स्वाभाविक रूप से होती। विकास की मुख्यधारा में, व्यवस्था में उनका दबदबा होता। काश! ऐसा होता! किंतु आज महिलाओं के विभिन्न वर्गों के बीच इतनी गहरी खाई है कि यदि महिला आरक्षण बिल पास भी हो जाए तब भी एक और कुंडली मारकर सत्ता के गलियारों में बैठे पितृसत्ता उन्हें अपने नियमों के हिसाब से चलाएगी, तो दूसरी ओर आम महिलाएँ सत्ता–संघर्ष में कैसे शामिल हो पाएँगी? हो गईं तो फिर कैसे टिक पाएँगी? राजनीतिक परिवारों की बहू–बेटियाँ–पत्नियाँ या रिश्तेदारों से यदि जगह (सीट) खाली रह गई तो विशिष्ट औरत या किसी सेलेब्रेटी को टिकट दे दी जाएगी। अब तक जो पुरुष खुद लड़ते थे, अब सीट आरक्षित हो जाने पर पत्नी को टिकट दिलवा देंगे, पत्नी को रिमोट कंट्रोल की तरह चलाएँगे, क्या यही लोकतंत्र है? इससे व्यवस्था बदल जाएगी? क्या आम औरत के हालात सुधर पाएँगे? महिला आरक्षण बिल पास होने या न होने का क्या औचित्य एवं सार्थकता रहेगी?

पत्रकारिता और विज्ञापन में स्त्री –

फिल्म, ग्लैमर–जगत्, फैशन–जगत्, सौंदर्य–जगत्, उद्योग–जगत्, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आदि पुरुष सत्ता के प्रतिमान हैं। पूँजी उन्हीं की लगी हुई है। यह पूँजी उन्हें अपने इशारों पर नचाती है, चाहे वह विज्ञापन–जगत् हो या फिल्म–जगत् या अन्य कोई जगत् मोटरसाइकिल का विज्ञापन हो या सीमेंट का विज्ञापन स्त्री–देह के सौंदर्य को भुनाया जाता है, जबकि मोटरसाइकिल या सीमेंट का स्त्री के शरीर से दूर–दूर तक कोई संबंध नहीं है। तो क्या स्त्री देह का पर्याय है? तो फिर स्वतंत्रता को बहुत सीमित संदर्भ में देखने वाली बात होगी। फिर तो स्त्री सिर्फ देह है, शरीर है, वस्तु है, चीज है। ऐसा नहीं है। स्त्री स्वतंत्रता स्त्री की अस्मिता एवं पहचान के संदर्भ में होती है। स्त्री की अस्मिता एवं पहचान स्त्री के अस्तित्व की प्रामाणिकता एवं व्यक्तित्व की परिपूर्णता से निर्मित होती है। स्त्री–संबंधी इस धारणा और मानसिकता को बदलने की आवश्यकता है।

महर्षि दयानंद का स्त्री–विमर्श स्त्री–संबंधी धारणा एवं मानसिकता को बदलता है। स्त्री को एक स्वतंत्र मानव अस्तित्व के रूप में ग्रहण करता हुआ स्त्री का मानवीय गरिमा का सम्मान करते हुए उसे पुरुषों के समान ही व्यक्तित्व के प्रस्फुटन का रचनात्मक अवसर प्रदान करता है। स्त्री को एक मानवीय भूमिका में उतारता है। आवश्यकता स्त्री की इस भूमिका को युगानुरूप विस्तार देने की है; संपत्ति में स्त्री के अधिकार को सुनिश्चित करने की है, ताकि पूँजी अधिग्रहण के माध्यम से उसका भी दर्जा बढ़े। इसके लिए सामाजिक व्यवस्था एवं परिवेश को स्त्री के अनुकूल बनाना होगा। सामाजिक धारणा बदलनी होगी। हमें भी बदलना होगा। महर्षि दयानंद ने स्त्री की स्थिति में हस्तक्षेप करते हुए इसी बिंदु से बदलाव की शुरुआत की थी। सामाजिक व्यवस्था का नया ताना–बाना बुनते हुए स्त्री के लिए समान अवसर, समान वातावरण, समान नियम, समान अधिकार एवं समान स्वतंत्रता का प्रावधान करते हैं। समानता एवं मानवीयता के परिवेश में ही स्त्री की स्थिति और भूमिका बदल सकती है। समाज के साथ–साथ हमारी धारणा और मानसिकता बदलेगी, क्योंकि दृश्य एवं दृष्टि परस्परता में बदलते हैं।

विवाह संस्था पर आज प्रश्नचिन्ह क्यों?

आज के समय में बहस का एक बड़ा मुद्दा है–विवाह संस्था । विवाह को लेकर कई तरह की बातें होती हैं–मसलन विवाह को खत्म कर देना चाहिए, विवाह अप्रासंगिक हो गया है, विवाह समस्याग्रस्त है आदि–आदि। विवाह की संस्था में कमियाँ हो सकती हैं या हैं। संसार की शायद ही कोई संस्था हो जिसमें कोई न कोई कमी या अपूर्णता न हो! वास्तव में पूर्ण कुछ नहीं होता है। पूर्णता की तलाश ही भ्रममेय है। पूर्ण सिर्फ एक ही चीज है–ब्रह्म, ईश्वर, भगवान्, खुदा कुछ भी कह लीजिए। फिर विवाह का विकल्प क्या है? समलैंगिकता या फिर सम्मिलित जीवन जीने वाला 'लीविंग रिलेशन'। समलैंगिकता न तो आम औरत का मुद्दा है, न आदर्श स्थिति है और न ही सामाजिक निर्माण का उपकरण। अपवादस्वरूप यह सामंजस्य अलग बनावट एवं सोच के कुछ लोगों की जीवन–पद्धति है। जहाँ तक सम्मिलित जीवन जीने वाले 'लीविंग रिलेशन' का संबंध है–एक स्वतंत्र एवं लोकतांतिक देश में अपने तरीके से निजी जीवन जीने का अधिकार सभी को है, लेकिन इसका भविष्य नहीं होता, संबंध की अवधि कम होती है। जिम्मेदारी और प्रतिबद्धता नहीं होने. कारण स्थायित्व नहीं होता। यह एक प्रकार का प्रयोग पर आधारित आपसी संबंध होता है उपभोक्ता सामान (कंज्यूमर गुड्स) की तरह, जब तक ठीक है चल रहा है, जहाँ खराब वहाँ फेंको। छोटी बात पर यदि कोई खट–पट हो गई हो तो संबंध विच्छेद हो सकता है। ऐसे में यदि गर्भ भी है या नवजात शिशु है, फिर आदमी अपने रास्ते, औरत अपने रास्ते और बच्चा चौराहे पर (किसी कचड़े के ढेर या कूड़ेदान में) नहीं तो गर्भपात तो है ही! न ही रिश्ते का भविष्य और न बच्चे का। सामाजिक दबाव या हस्तक्षेप से मुक्त होने के कारण इसमें उत्तरदायित्व और सामाजिक प्रतिबद्धता से भी मुक्ति होती है। अतएव अलग होने में भी समय नहीं लगता। क्या यह सही/बेहतर विकल्प हो सकता है?

विवाह की संस्था हो या अन्य कोई संस्था। हम संस्थाओं में कमियों का विरोध तो कर सकते हैं, लेकिन संस्थाओं का निषेध नहीं कर सकते। जैसे किसी स्कूल या कॉलेज में शिक्षा का स्तर गिर रहा हो तो हमारा प्रयास गिरावट का विरोध करना या सुधारना होगा। यह नहीं कि स्कूल या कॉलेज ही नहीं होना चाहिए। महर्षि दयानंद का संपूर्ण नारी–विमर्श विवाह की संस्था के साथ–साथ समाज की संस्था की गिरावट का विरोध कर उसकी मानवीय बनावट के साथ रचनात्मक परिणति देता है। महर्षि दयानंद विवाह संस्कार के पूर्व के समाज का संस्कार करते हैं। वे संस्थाओं का निषेध नहीं करते। स्त्री और पुरुष के

सामाजिक परिवेश को मानवीय परिवेश में रूपांतरित करते हैं जहाँ परस्पर समान मानवीय अधिकार हैं, अवसर की स्वतंत्रता है है, समानता है। जहाँ स्त्री–पुरुष के बीच वर्चस्ववादी या अधीनस्थवादी संबंध न होकर कर समता और मानवीयता का संबंध है। विवाह की संस्था को सामंती बनाकर लोकतांत्रिक बनाते हैं, जहाँ स्त्री का शिक्षित एवं विकसित स्वयंवर की रीति से वर के चयन की स्वतंत्रता रखता है। जहाँ चयन का आधार जन्म, जाति, पैसा, बैंक बैलेंस, प्रोपर्ट आदि का बाह्य आधार न होकर समान गुण, जैसे–विद्या, दिनय स्वभाव, शालीनता, रूप, शरीर का परिणाम, चरित्र आदि होता है। जहाँ कुंडली और ग्रह–दशाओं के मेल के स्थान पर गुणों का मेल होता है, व्यक्तित्व का मेल होता है। जहाँ फिजूलखर्ची और धन का प्रदर्शन प्रियता के कृत्रिमता के स्थान पर सादगी और सच्चाई होती है। आज हमने स्वयं ही विवाह की संस्था को बीमार बना दिया है। विवाह को एक व्यापार बना दिया है। धन का लाभ (दहेज) या धन का अपव्यय देखकर आज गरीब माँ–बाप बेटी पैदा होते हुए दहशत में आ जाता है। कन्या भ्रूण–हत्याएं या गर्भपात की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मानवीय गुणों का मेल न होने पर अनमेल विवाह होगा तब अमानवीय घरेलू हिंसा, उत्पीड़न एवं क्लेश तो होगा ही, बात तलाक तक पहुँच जाती है। आज तलाक के लाखों मुकदमे विभिन्न अदालतों में चल रहे हैं, जिसकी यातना पूरा परिवार झेलता है। जाति की दीवार खड़ी होने के कारण लाखों लडकियों को अपने प्रेम को न्योछावर कर 'जात–बिरादरी' के भय से या तो आत्महत्या करनी पड़ती है या फिर माँ–बाप की पसंद किए हुए अपनी जाति में विवाह कर जिंदगी–भर टीस, कसक एवं एडजस्टमेंट के साथ जीना पड़ता है, जिसे समर्पण नहीं कहा जा सकता, मजबूरी कहा जाता है। क्या वह कभी आंतरिक खुशी और जीवन जीने की सार्थकता का अनुभव कर सकेंगी! ऐसे कई प्रश्न ओर स्थितियाँ हैं जिसके लिए हम स्वंय जिम्मेदार हैं, इस तरह की विसंगति एवं विद्रूपताओं के कारण ही विवाह की संस्था चरित्र में गिरावट और कमियां आई हैं। महर्षि दयानंद का नारी–विमर्श इन तमाम नारी–प्रश्नों, अमानवीय विसंगतियों एवं विद्रूपताओं से जूझता है, संघर्ष करता है। महर्षि दयानंद नारी–चिंतन या नारी–प्रश्नों तक सीमित नहीं रहते, बल्कि उसके आगे जाकर आर्यसमाज जैसे संस्था को जन्म देकर उसके माध्यम से आंदोलन खड़ा करते हुए, उसे एक रचनात्मक परिणति प्रदान करते हैं।

महर्षि दयानंद के नारी–विमर्श में वैचारिकता से अधिक रचनात्मकता है। अपनी रचनात्मकता के कारण उसकी मूल्यवत्ता एवं सार्थकता है। मूल्य और सार्थकता की तलाश हर युग में होती है। आज के स्त्री–विमर्श की दिशाहीनता की स्थिति एवं चुनौतियों के युग में दिशानिर्देशक के रूप में महर्षि दयानंद के स्त्री–विमर्श, बल्कि यूँ कहें कि स्त्री के दयानंदीय विमर्श की आवश्यकता कल से अधिक आज है। यदि इनके विचारों को आत्मसात् कर लिया जाए तो सभी सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, वैधानिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, जातिवादी कलह, असमानता को दूर किया जा सकता है। आज इस आधुनिक प्रकाश और सत्य की आवश्यकता है। इतिहास में महर्षि दयानंद के स्त्री–विमर्श की जो भूमिका थी, वर्तमान में स्त्री–विमर्श की उस भूमिका को इतिहास बोध के साथ युगानुरूप विस्तार किया जा सकता है। इस बात की गुंजाइश स्वयं महर्षि दयानंद सरस्वती अपने स्त्री–विमर्श के भीतर प्रस्तावित करते हैं।

References

1. Dayanand Saraswati. Satyarth Prakash (The Light of Truth). Translated by Chiranjiva Bhardwaja. Arya Samaj, 1875.
2. Altekar, A.S. The Position of Women in Hindu Civilization: From Prehistoric Times to the Present Day. Motilal Banarsidass, 1956.
3. Sharma, Arvind. Hinduism and Its Sense of History. Oxford University Press, 2003.
4. Chakravarti, Uma. Gendering Caste: Through a Feminist Lens. Kali for Women, 2003.
5. Kumar, Radha. The History of Doing: An Illustrated Account of Movements for Women's Rights and Feminism in India, 1800–1990. Zubaan, 1997.
6. Bhattacharya, Nandini. Feminism and Nationalism in Colonial India: 1917–1935. Routledge, 2018.
7. Jha, Ganganath. "Dayanand Saraswati and the Reform of Hindu Society." Indian Journal of Philosophy and Religion, vol. 12, no. 2, 1987, pp. 45–61.
8. Nanda, Meera. Prophets Facing Backward: Postmodern Critiques of Science and Hindu Nationalism in India. Rutgers University Press, 2003.
9. Sharma, Madhu Kishwar. "Women in Hindu Scriptures: Reinterpreting Tradition." Manushi Journal, no. 42, 1987, pp. 2–10.
10. Pandey, Rajendra. Social Reform and Feminist Thought in Modern India. Rawat Publications, 2005.